पास और फेल के चक्कर में फंसी शिक्षा

के.आर.शर्मा

माहौल परीक्षा का है। छात्र–छात्राओं के चेहरे बुझे–बुझे से, डरे–डरे से हैं। एक अजीब सी दहशत व्याप्त हैं। साल भर की पढ़ाई के बाद तो उनमें आत्मविश्वास का सैलाब उमड़ना चाहिए, किंतु वो असहज हो चले हैं। छात्र–छात्राओं के चेहरों पर तनाव स्पष्ट झलक रहा है। इतना ही नहीं परीक्षा की वजह से चिंता, तनाव, असहजता उनके परिवार वालों में भी व्याप्त हैं। जरा परीक्षा स्थल का नजारा देखें– साल भर की पढ़ाई (?) की ढाई–तीन घंटे में परख होने वाली है। परीक्षा हाल के बाहर पुलिस वालों का पहरा! सवाल इस बात का कि परीक्षा स्थल पर पुलिस वालों का क्या काम? इतना ही नहीं, परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्न–पत्र भी पुलिस थाने में रखे हैं, जो निर्धारित समय पर परीक्षा स्थल पर लाए जाते हैं। किसी भी शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य छात्रों का मूल्यांकन करना होता है कि उन्होंने सबक ठीक से सीखे हैं या नहीं। लेकिन यह कैसी विडंबना है कि यह परीक्षा शिक्षा तंत्र में और समाज में हड़कंप मचा देती है। परीक्षा हेराफेरी, बेईमानी, आंतक और हिंसा का पर्याय बन चुकी है। परीक्षा शिक्षकों की वेतन वृध्दि रूकवा सकती है, उनके स्थानांतरण करवा सकती है, परिक्षार्थियों को जेल भिजवा सकती है और पुलिस वालों को बंदूक चलाने के लिए बाध्य कर सकती है। जिन छात्रों के पास कलम होनी चाहिए उनको हथियार रखने के लिए प्रेरित कर सकती है। हर साल ऐसे दुःखद समाचार बनते हैं कि परीक्षा में फैल होने पर कई छात्र–छात्राएं आत्महत्या तक कर डालते हैं। परीक्षाएं जिस मकसद से होती है

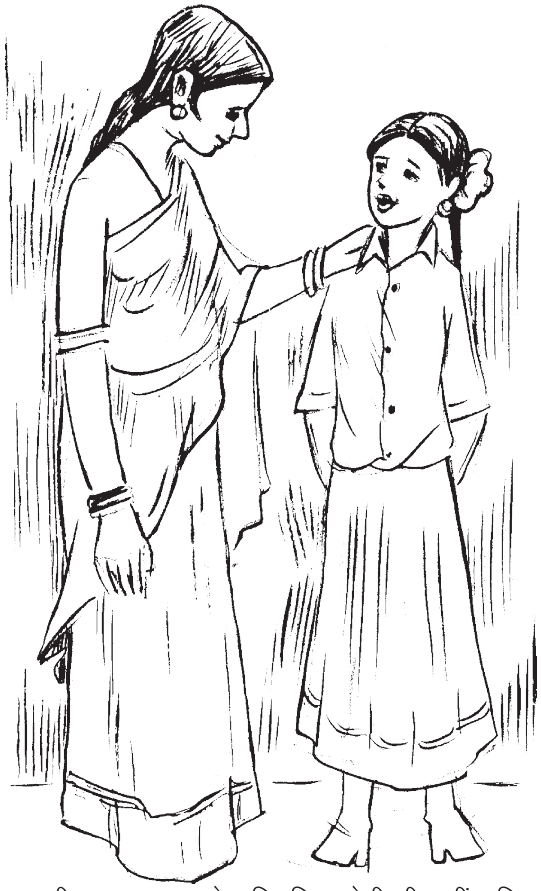

उसकी मूल भावना तो परिलक्षित होती ही नहीं बल्कि परीक्षा तो अविश्वास की बुनियाद पर टीकी हुई है। इस अविश्वास को पुख्ता करने के लिए जो गोपनियता बरती जाती है वो अपने आप में एक कलंक ही है। ऊपर से नीचे तक कहीं भी देख लें, परीक्षा की प्रक्रिया को हर कोई शक की निगाह से देखता है। परीक्षा का ताना–बाना इस प्रकार से बुना जाता है कि हर कोई एक दूसरे पर अविश्वास करें और अविश्वास के चलते परीक्षा संपन्न हो।

दरअसल परीक्षा के चक्कर में ही पूरा शिक्षा तंत्र अपना समय बरबाद कर देता है। समाज में तथाकथित समझ बिठा दी जा चुकी है कि परीक्षा ही सब कुछ है। परीक्षा का मूल मकसद तो यह भी होना चाहिए कि बच्चे ने जो गलतियां की हैं उनको सुधारने का मौका मिले। यानेकि छात्र को एक प्रकार से फीडबैक मिले कि उसने जो परीक्षा में प्रश्न–पत्र को हल किया है उसमें क्या बेहतर किया और क्या गड़बड़ की है।

शिक्षा और परीक्षा के सबंध में जॉन होल्ट के विचार को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। जॉन होल्ट सफलता और असफलता को एक व्यापक दायरे में देखते हैं। अपने द्वारा लिखी पुस्तक **हाउ चिल्ड्रन फैल** यानेकि **बच्चे असफल कैसे होते हैं?** में होल्ट कहते हैं कि स्कूल जिन बच्चों को सफल घोषित कर देते हैं वे सच्चे अर्थों में असफल ही रह जाते हैं। और यह असफलता एक–दो–चार बच्चों में ही नहीं बल्कि अनगिनत बच्चों की सामूहिक असफलता हैं। बच्चे सफल होकर भी असफल इन अर्थों में हो जाते हैं क्योंकि उनकी सीखने–समझने की और रचने की नैसर्गिक क्षमताओं का क्षरण हो जाता है। बच्चों की असफलता में होल्ट जोड़ते हैं कि स्कूल उन्हें डराना सिखाते हैं। स्कूली माहौल से बच्चे ऊबने लगते हैं। तथा स्कूल में जो कुछ भी पढ़ाया जाता है उससे बच्चे असमंजस में पड़ जाते हैं। होल्ट कहते हैं कि जिस असफलता, निराशा और डर के दुष्चक्र में बच्चा फंसा और उससे यदि नहीं उबर पाता है तो मैं उस बच्चे का कोई भविष्य नहीं देख पाता हूं। होल्ट सीखने की पूरी प्रक्रिया को एक स्वतंत्र और उन्मुक्त वातावरण में देखते हैं। सीखने में बच्चे की असफलता सचमुच एक शिक्षक और स्कूल की ही असफलता है।

विद्यार्थी ने कक्षा में क्या सीखा है, संबंधित कक्षा की विषयवस्तु को विद्यार्थी ने किस हद तक आत्मसात कर पाया है और शिक्षक ने जो मेहनत की है वह विद्यार्थी के मन मस्तिष्क में किस हद तक पंहुच पाई है इसका आकलन तो होता ही नहीं। दरअसल परीक्षा केवल विद्यार्थी की ही नहीं बल्कि शिक्षक की भी होती है। लेकिन परीक्षा को लेकर खींचातानी मची रहती है। हमारा समाज शिक्षा तंत्र, शासन, प्रशासन हर कोई यह सब स्वीकार कर चुका है कि परीक्षा के दौरान नकलबाजी तो होनी है। प्रश्न–पत्र आउट हो सकते हैं। उत्तरपुस्तिकाओं की जांच के दौरान हेराफेरी हो सकती है। अतः इनसे निपटने की तैयारी की जाती है। लेकिन सब तैयारियां

अपनी जगह धरी रह जाती है। ऐसा लगता है कि इस तथाकथित परीक्षा के बेहतर विकल्पों पर कोई सोचना नहीं चाहता है। शिक्षा विभाग में ऊंचे ओहदों पर बैठे अधिकारी भले ही सैद्धांतिक तौर पर यह मान लें कि वर्तमान परीक्षा व्यवस्था में काफी गड़बड़ है। पर उस गड़बड़ को दूर करने की दिशा में कोई सार्थक पहल होती नहीं दिखती। सच तो यह है कि बोर्ड की परीक्षा में सबसे ज्यादा धांधलियां होती है। कई शिक्षक और लोग–बाग इस बात को बड़े ही हास्यास्पद रूप में कहते हैं कि बोर्ड की परीक्षा तो 'बोर्ड' पर होती है। यह समझ से परे हैं कि बोर्ड की परीक्षा से क्या हासिल होता है? जबकि बोर्ड की परीक्षा में पूरा शिक्षा विभाग का अमला और स्थानीय प्रशासन काफी सारा समय बरबाद करता है।

असल में परीक्षा ऐसी होनी चाहिए कि जो छात्रों को फीडबैक दे सकें कि उन्होंने क्या सीखा है। और जो गलतियां की हैं उनको सुधारने के मौके मिल सकें। हमारे यहां पर ऐसी मांगें भी छात्रों की ओर से उठी कि उनको उत्तरपुस्तिकाएं दिखाई जाए। लेकिन सूचना के अधिकार के बावजूद इस मांग को सिरे से ही खारिज कर डाला गया। परीक्षा के माध्यम से छात्रों को इस बात का पता लगना चाहिए कि आखिर कहां पर गलत हैं, कमजोर हैं, या किस तरह की गलती उनने की है वगैरह। आज पूरे शिक्षा तंत्र पर परीक्षा हावी हो चुकी है। शिक्षा संस्थानों में साल भर जो भी शिक्षण होता है वह सीखने के संदर्भ में न होते हुए परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए होता है। कमोबेश शिक्षक भी इसी उलझन में रहता है कि उसकी कक्षा का नतीजा अच्छा आए ताकि उसकी नौकरी पर कोई आंच न आए।

परीक्षा में नकल के एक से एक नायाब तरीके खोज लिए जाते हैं। परीक्षा एक तरह से चोर और सिपाही का एक खेल बनकर रह गई है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि बोर्ड परीक्षा की बागडोर तो पुलिस और शिक्षा प्रशासन के हाथ में आ जाती है। और शिक्षक की भूमिका गौण हो जाती है। हांलाकि अभी तक नकल करने और परीक्षा में पास होने के लिए कोई बुकलेट बस अड्डों या रेल्वे प्लेटफार्मों पर बिकते नहीं देखी गई है। दरअसल ऐसा करने की जरूरत भी क्या है। नकल, हेराफेरी करने के तमाम अचूक नुस्खे अलिखित रूप से ही प्रसारित हो जाते है। परीक्षा संपन्न होने के बाद उत्तरपुस्तिकाओं के मूल्यांकन का काम शुरू होता है। यदि आप किसी मूल्यांकन केंद्र पर उत्तरपुस्तिकाओं का मूल्यांकन करते देख लें तो इस परीक्षा से आपका विश्वास ही उठ जाए। कुल मिलाकर परीक्षा एक यांत्रिकीय विधि से होती है। और एक दिन ऐसा आता है कि परीक्षा के नतीजे घोषित हो जाते हैं। सच पूछें तो परीक्षा मानवीय मूल्यों, भावनाओं संवेदनाओं जैसी चीजों से कोसों दूर रहती है। परीक्षा अच्छे–बुरे, ईमानदार–बेईमान, बुध्दिमान–कमजोर विद्यार्थियों में फर्क नहीं कर पाती है।